भारत के राष्ट्रपति, श्री प्रणब मुखर्जी द्वारा प्रथम भैरों सिंह शेखावत स्मृति व्याख्यान

जयपुर, राजस्थान : 15 मार्च, 2017

भारत में संसदीय लोकतंत्र का इतिहास

1. मैं एक श्रेष्ठ राजनेता, जमीन से जुड़े सच्चे सपूत और जनपुरुष हमारे पूर्व उपराष्ट्रपति श्री भैरों सिंह शेखावत की स्मृति में आरंभ किए गए स्मृति व्याख्यान के लिए आमंत्रित किए जाने पर सम्मानित हुआ हूं।

2. श्री शेखावत और मेरी मैत्री का एक लम्बा इतिहास रहा है। हमने 1970 के दशक में राज्य सभा में मिलकर कार्य किया। बाद में, जब वह राजस्थान के मुख्य मंत्री थे, मैं योजना आयोग का उपाध्यक्ष था, मुझे राजस्थान के लोगों के सम्मुख समस्याओं के बारे में उनकी व्यापक जानकारी तथा दिन प्रतिदिन की समस्याओं को दूर करने की उनकी इच्छा शक्ति को समझने का अवसर प्राप्त हुआ था। मैं शोषितों और गरीबों के लिए उनकी प्रतिबद्धता से अत्यधिक प्रभावित हुआ।

3. पांच दशकों के अपने प्रख्यात जीवन के दौरान, उन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण पद संभाले। वह 1952 से लेकर 45 वर्ष की अवधि से अधिक राजस्थान विधान सभा के सदस्य थे तथा लगभग 3 वर्ष तक राज्य सभा के सदस्य भी थे। उन्होंने राजस्थान के मुख्य मंत्री के रूप में 3 कार्यकाल तक कार्य किया तथा राजस्थान विधान सभा के विपक्ष के नेता के पद पर भी रहे। अगस्त 2002 में उन्हें देश के उपराष्ट्रपति के महत्त्वपूर्ण पद के लिए चुना गया और उन्होंने जुलाई, 2007 तक कार्य किया। राज्य सभा के पदेन अध्यक्ष के रूप में, उन्होंने अत्यंत विशिष्टता के साथ उच्च सदन की कार्यवाही संचालित की तथा पद के साथ शालीनता और गरिमा को जोड़ा। इन उच्च पदों को संभालने के अतिरिक्त, श्री शेखावत जी ऐसी अनेक कल्याणकारी योजनाओं के साथ भी संबंधित थे जिन्होंने जनसाधारण के जीवन तक पहुंच बनाई। आज उनकी समृद्ध विरासत हमारे साथ बनी हुई है और उन्हें एक दूरदर्शी राजनेता, एक विशिष्ट विधायक तथा मानवीय मूल्यों के प्रतिबद्ध समर्थक के रूप में सम्मान के साथ याद किया जाता है।

4. देवियो और सज्जनो, मैंने आज के व्याख्यान के लिए 'भारत में संसदीय लोकतंत्र का इतिहास' विषय को चुना है।

5. हमारी शासन और विधायी संस्थाओं की आधुनिक संसदीय प्रणाली अपने उद्भव और विकास के लिए ब्रिटिश विरासत की ऋणी है। फिर भी इन संस्थाओं ने भारतीय भूमि पर सहज विकास किया क्योंकि भारत 3000-1000 ईसा पूर्व वैदिक युग से भी पहले देश के अधिकांश भागों में सरकार के गणतंत्रात्मक रूपों, वैचारिक प्रतिनिधि निकायों तथा स्वशासन संस्थाओं का स्थान था। प्राचीन भारत के शासक धर्म से बद्ध थे जो विधि शासन, संविधानवाद अथवा परिसीमित सरकार से मिलता-जुलता था। ऋग्वेद और अथर्ववेद में सभा और समिति का

उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त ऐतरेय ब्राह्मण, पाणिनी की अष्टाध्यायी, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, महाभारत, अशोक के स्तंभ शिलालेख, बौद्ध और जैन ग्रंथ आदि हमारे इतिहास के उत्तर वैदिक काल के अनेक गणतंत्रों के विद्यमान होने की जानकारी देते हैं।

6. ग्राम स्तर पर ग्राम संघ, ग्राम सभा अथवा पंचायत जैसे प्रतिनिधि निकाय ब्रिटिश शासन के आगमन तक मध्य कालीन और मुगलकाल सहित अनेक राजवंशों के दौरान कार्य करते रहे और फलते-फूलते रहे।

7. आधुनिक काल की विधायी प्रक्रिया के उद्गम 1601 के चार्टर से जाने जा सकते हैं जिसने गवर्नर और ईस्ट इंडिया कंपनी को श्रेष्ठ सरकार के लिए यथा आवश्यक और सुविधाजनक लगने वाले ऐसे और ऐसे बहुत सारे कानूनों, संविधानों, आदेशों और अध्यादेशों को बनाने, लागू करने और निर्माण करने के लिए प्राधिकृत किया। 1726 के चार्टर में पहली बार गवर्नरों तथा तीन सूबों की परिषदों को वैधानिक शक्ति प्रदान की गई।

8. 1773 के रेगूलेटिंग एक्ट का भारत के वैधानिक इतिहास में एक विशेष महत्त्व है क्योंकि इससे कम्पनी के संचालन पर संसदीय नियंत्रण की शुरुआत हुई। इस एक्ट ने भारत का प्रादेशिक एकीकरण और प्रशासनिक केन्द्रीकरण की प्रक्रिया आरंभ की। इसने बंगाल सूबे को सर्वोच्चता प्रदान की तथा बंगाल के गवर्नर को गवर्नर जनरल नियुक्त किया। गवर्नर जनरल की सहायता के लिए चार सदस्यों की एक परिषद गठित की गई।

9. 1833 के चार्टर एक्ट ने कम्पनी के व्यापार अधिकारों को समाप्त कर दिया तथा इसे केवल भारत में राजशाही की एक प्रशासनिक एजेंसी बना दिया। बंगाल के गवर्नर जनरल को इसके बाद भारत के गवर्नर जनरल के रूप में नियुक्त किया गया तथा संपूर्ण ब्रिटिश भारत के प्रशासन का अधिकार दिया गया। पहली बार गवर्नर जनरल की सरकार को भारत की सरकार और उसकी परिषद को भारतीय परिषद के रूप में जाना गया। इस एक्ट ने भारत के सभी ब्रिटिश प्रदेशों के लिए एक विधान परिषद स्थापित की तथा परिषद की विधि निर्माण बैठकों को इसकी कार्यकारी बैठकों से पृथक करके एक संस्थागत विशिष्टता की शुरुआत की। इस प्रकार राज्य के विधान संबंधी कार्यों को पहली बार इसके कार्यकारी कामकाज से अलग कर दिया गया।

10. 1852 में कोलकाता की ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन ने उस काल की बढ़ती राजनीतिक चेतना को प्रतिबिम्बित करते हुए, भारत में, लोकप्रिय हो रहे एक विधानमंडल की स्थापना के लिए ब्रिटिश संसद में याचिका दी। संभवत: पहली बार विधान संबंधी सुधारों के विषय पर भारतीय मत व्यक्त किया गया।

11. 1853 के चार्टर एक्ट के अंतर्गत, अपनी विधायी क्षमता के तहत कार्य करते समय, परिषद में विचार विमर्श लेखन की बजाय मौखिक हो गया। सामान्य तीन स्तरों पर बिल पारित किए गए और चयन समितियों को भेजे गए। वैधानिक कार्य का संचालन गोपनीय की बजाय सार्वजनिक कर दिया गया तथा कार्यवाहियों की रिपोर्टों का प्रकाशन अधिकृत रूप से किया गया। कार्यवाहियों के संचालन और नियमन के लिए स्थायी आदेश दिए गए। नई परिषद

ने अपने कार्यों को न केवल विधान निर्माण तक सीमित रखा बल्कि शिकायतों की जांच और निवारण के उद्देश्य से एकत्रित एक लघु प्रतिनिधि सभा का रूप ग्रहण करना भी आरंभ कर दिया।

12. 1853 के एक्ट ने पहली बार विधान मंडल को अपने नियम और प्रक्रिया बनाने का अधिकार प्रदान किया। श्री प्रसन्न कुमार टैगोर को परिषद के क्लर्क पद पर नियुक्त किया गया और वह परिषद को प्रक्रिया का संसदीय रूप प्रदान करते रहे तथा उन्होंने इसे सरकार के एक पृथक अंग के रूप में अपनी स्वायत्तता पर बल देने के लिए प्रोत्साहित किया। जनता को परिषद की कार्यवाही को देखने की अनुमति प्रदान की गई और 1856 में प्रेस रिपोर्टिंग की अनुमति दी गई। वैधानिक परंपराओं और प्रक्रियाओं की प्रगतिशील स्थापना के बावजूद, परिषद में कोई भारतीय भागीदारी नहीं थी।

13. 1858 के गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट ने पहली बार परिषद में गैर सरकारी भागीदारी आरंभ की। गवर्नर जनरल को अपनी परिषद में न्यूनतम छह और अधिकतम बारह अतिरिक्त सदस्य, जिनमें से आधे गैर सरकारी हों, नामित करने का अधिकार दिया गया। 1862 में, वायसराय लॉर्ड केनिंग ने नवगठित विधान परिषद में तीन भारतीयों– पटियाला के महाराजा सर नरेंद्र सिंह, बनारस के राजा देव नारायण सिंह तथा ग्वालियर के राजा सर दिनकर राव रघुनाथ को नियुक्त किया। 1862 से 1892 के बीच पैंतालीस भारतीयों को विधान परिषद में नामित किया गया। इनमें से अधिकतर सत्तासीन राजकुमार या मुखिया और धनी जमींदार परिवार थे। लॉर्ड रिपन के वायसराय काल के दौरान, एक व्यापारी दुर्गाचरण लॉ, स्कूलों के एक निरीक्षक राजा शिवा प्रसाद तथा एक प्रेजीडेंसी मजिस्ट्रेट सैयद अमीर अली को नामित किया गया। ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन द्वारा हिन्दू पैट्रियाट के संपादक, क्रिस्टोदास पाल की सिफारिश की गई और उनके निधन के बाद, लॉर्ड रिपन ने प्यारे मोहन मुखर्जी को भी परिषद में नामित किया। सैयद अहमद खान, वी.एन. मंडलिक, के.एल. नलकर और रास बिहारी घोष जैसे प्रबुद्धजन 1872-92 के दौरान परिषद में नामित लोगों में शामिल थे।

14. यद्यपि नामित भारतीय सदस्य विचार-विमर्श में कम रुचि लेते थे और अधिकतर तैयार किए गए संक्षिप्त भाषण पढ़ते थे। वे दब्बू बने रहते थे और सरकार का कम विरोध करते थे। इसी तरह बहुत से अंग्रेज परिषद में भारतीय भागीदारी का कड़ा विरोध किया करते थे। 1883 में एक व्यंग्यपूर्ण पर्चे में तर्क दिया गया, ''बंगाली बाबुओं को कोई भी प्रोत्साहन का परिणाम ब्रिटिश शासन के पूर्ण सफाए से कम नहीं होगा, और स्वशासित भारत एक विफल संसदीय लोकतंत्र सिद्ध होगा जिससे अराजकता पैदा होगी तथा सैन्य तानाशाही कायम हो जाएगी।''

15. क्रिमिनल प्रोसिजर अमेंडमेंट बिल (1883-84) अथवा इल्बर्ट बिल की शुरुआत के कारण 29 दिसम्बर, 1883 को कोलकाता में प्रथम राष्ट्रीय सम्मेलन की पहली बैठक हुई। सुरेंद्रनाथ बैनर्जी और आनंद मोहन बोस इसके प्रमुख आयोजक थे। बोस ने इस सम्मेलन को

राष्ट्रीय भारतीय संसद के गठन की दिशा में प्रथम चरण बताया। सम्मेलन में भारत की जनता की उन्नति के लिए प्रतिनिधि विधान सभाओं की शुरुआत करने की मांग की गई। राष्ट्रीय सम्मेलन अनेक मामलों में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पृष्ठभूमि थी।

16. 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना ने दायित्वपूर्ण सरकार के विकास को तीव्र कर दिया। अपने पहले ही सत्र में, कांग्रेस ने संवैधानिक सुधारों तथा विधान परिषदों में निर्वाचित सदस्यों के पर्याप्त अनुपात में प्रवेश तथा बजट पर विचार-विमर्श का अधिकार देने की मांग करते हुए एक प्रस्ताव पारित किया। कोलकाता के पहले सत्र में अपना अध्यक्षीय संबोधन देते हुए, डब्ल्यू. सी. बैनर्जी ने कांग्रेस को भारत की राष्ट्रीय विधान सभा बताया।

17. विधान परिषदों के सुधार और विस्तार की मांग प्रत्येक वार्षिक कांग्रेस में होती रही तथा वर्ष दर वर्ष और तेज होती गई। कांग्रेस ने परिषद के सुधार को अन्य सभी सुधारों का मूल माना। इसी प्रकार, वायसराय लॉर्ड डफरीन ने कांग्रेसियों को सार्वजनिक रूप से एक अत्यंत सूक्ष्म अल्पसंख्यक के रूप में खारिज कर दिया और कहा कि भारत में सरकार की लोकतांत्रिक पद्धतियां अथवा संसदीय प्रणाली का अंगीकरण अज्ञात स्थान पर लगाई गई एक लम्बी छलांग होगी।

18. प्रत्युत्तर में, बॉम्बे में पांचवें कांग्रेस सत्र (1889) में विधान परिषदों के सुधार के प्रस्ताव पर बोलते हुए, बैनर्जी ने कहा, ''यदि आपने यह हासिल कर लिया तो आपने सब कुछ हासिल कर लिया। इस पर देश का पूरा भविष्य और हमारी प्रशासनिक प्रणाली का भविष्य टिका हुआ है।''

19. 1892 के भारतीय कौंसिल्स एक्ट में 'न्यूनतम दस, अधिकतम सोलह' अतिरिक्त सदस्यों को शामिल करते हुए विधान परिषद का विस्तार कर दिया गया। गवर्नर जनरल की विधान परिषद अथवा भारतीय विधान परिषद, जैसा कि इसे जाना गया, में चार प्रांतीय परिषदों में से एक-एक गैर सरकारी सदस्य तथा कलकत्ता चैंबर ऑफ कॉमर्स में से एक नामित करते हुए पांच और अतिरिक्त सदस्य शामिल किए गए। यद्यपि 'चुनाव' शब्द को जानबूझकर छोड़ दिया गया, सच्चाई यह थी कि प्रांतीय परिषदों के गैर सरकारी सदस्यों ने सिफारिश की और अपने नामितों को केंद्रीय परिषद में निर्वाचित कर दिया तथा अप्रत्यक्ष चुनाव के सिद्धांत की परोक्ष स्वीकृति का संकेत दिया।

20. एक वार्षिक बजट तैयार करने और उसे विधान मंडल के सम्मुख प्रस्तुत करने की प्रणाली 1860 में जेम्स विल्सन ने आरंभ की जो वायसराय परिषद के वित्त सदस्य के रूप में भारत भेजे गए ब्रिटिश संसद के सदस्य थे। 18 फरवरी, 1860 को पहला बजट पेश किया गया। जबकि बजट पर चर्चा, जिसकी अनुमति नहीं थी, को कुछ समय के लिए बजट को कराधान के किसी प्रस्ताव के साथ जोड़कर संभव बनाया गया। 1861-62 के दौरान, ऐसे 16 अवसर आए जब बजट पर इस तरह से चर्चा की गई। परिषद को बजट पर मत देने का कोई अधिकार नहीं था।

21. 1892 के एक्ट ने केन्द्रीय और प्रांतीय दोनों परिषदों को पहली बार कुछ परिस्थितियों में बजट वित्तीय समीक्षा अथवा चर्चा का अधिकार प्रदान किया। यद्यपि परिषद के सदस्यों के पास अभी भी किसी वित्तीय चर्चा के संबंध में कोई प्रस्ताव देने या पेश करने या परिषद को विभाजित करने की कोई शक्ति नहीं थी।

22. 1892 के एक्ट के अंतर्गत, सदस्यों को पहली बार प्रश्न पूछने और सरकारी सदस्यों से पूछताछ करने का अधिकार दिया गया। पहला प्रश्न 16 फरवरी, 1893 को पूछा गया। प्रश्नकर्ता भींगा के महाराजा थे और प्रश्न यात्रा पर सरकारी अधिकारियों के लिए राशन की आपूर्ति की संग्रह प्रणाली से उत्पन्न कठिनाइयों के बारे में था। 1905 और 1906 के दो वर्षों के दौरान, केवल 13 प्रश्न पूछे गए और विषय सेवा, रेलवे, राजस्व और विनिमय थे। कभी-कभार सूचना को इस आधार पर अस्वीकार कर दिया जाता था कि उत्तर के लिए अधिकारियों को लम्बी तैयारी करनी पड़ेगी।

23. निर्वाचित सदस्यों के प्रवेश से परिषद के कार्यकाल में नए युग का सूत्रपात हुआ। प्रथम निर्वाचित भारतीय सदस्य वरिष्ठ कांग्रेसी सर फिरोजशाह मेहता, सरकारी नीतियों की आलोचना करने के मामले में स्पष्टवादी, साहसी और ओजपूर्ण थे। सर फिरोजशाह शहर में योगदान के लिए 'लॉयन ऑफ बॉम्बे' और विधायक के रूप में अपनी भूमिका के लिए 'फेरोसियस मेहता' के तौर पर विख्यात थे। भारत में राष्ट्रवादी आंदोलन के विकास को रोकने के लिए, लॉर्ड लिट्टन ने देशी भाषाओं की प्रेस पर नियंत्रण लगाने का फैसला किया। फिरोजशाह मेहता ने इस प्रयास का कड़ा विरोध किया। उनका मानना था कि प्रेस यथासंभव स्वतंत्र होनी चाहिए और जनता को शिक्षित करना सरकार का मौलिक कर्त्तव्य है। उन्होंने चेतावनी दी कि 'इंग्लैंड को भारत को अपने स्तर तक उठाना चाहिए या भारत को उसे खींचकर अपने बराबर कर देना चाहिए।' सर फिरोजशाह मेहता के जीवनवृत्त को एक प्रमुख ब्रिटिश पत्रकार ने सारांश रूप में इस प्रकार बताया, ''मेहता नौकरशाही के विरुद्ध सदैव खड़े रहे, उन्होंने गोखले की भांति साहस प्रदर्शित किया, वह सुरेंद्रनाथ बैनर्जी के समान वाकपटु रहे तथा उनमें मोतीलाल घोष की तरह कटाक्ष शक्ति थी।''

24. 1890-1909 के दौरान, सर मेहता के अलावा, परिषद में गोपाल कृष्ण गोखले, आशुतोष मुखर्जी, रास बिहारी घोष, जी.एम. चिटनवीस, पी. आनंद चार्लु, बिशंभरनाथ, मुहम्मद रहीमतुल्लाह सयानी तथा सलीमुल्ला थे जिन्होंने राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक मुद्दों पर जनता की शिकायतों को अभिव्यक्त करने के लिए सीमित अवसरों का भरपूर प्रयोग किया। गोखले का, जिन्हें कुछ लोगों ने 'विपक्ष का नेता' कहना आरंभ कर दिया था, अर्थशास्त्र पर पूरा अधिकार था। उन्होंने सरकार के दावे का खंडन किया कि बजट अधिशेष अर्थव्यवस्था की दशा को दर्शाती है तथा उन्होंने तथ्यों और आंकड़ों के द्वारा भारत में घोर और गहरी होती जा रही गरीबी को व्यक्त किया, जिसका कारण सेना पर भारी खर्च, भारी कर नीति, वस्त्र निर्माण जैसे स्वदेशी उद्योगों पर उत्पाद कर लगाने, किसानों आदि के लिए सिंचाई सुविधाओं की कमी थी।

25. 1892 के एक्ट के दोष स्पष्ट थे। परिषद में अधिकारिक बहुमत बना रहा। सरकार भारतीय सदस्यों के विरोध को दरकिनार करके हमेशा बिल पारित कर सकती थी। भारतीय सदस्यों की कड़ी आलोचना, सरकार की दमन, बड़े पैमाने पर कारावास, निर्वासन आदि की नीति को रोकने में विफल सिद्ध हुई। बाद में बंगाल के विभाजन, महा अकाल और प्लेग महामारी आदि जैसी प्राकृतिक आपदाओं, जिनसे 1880 के दशक में बहुत बड़ी संख्या में लोगों की मृत्यु हो गई, के विरुद्ध आंदोलन हुए।

26. 1906 में दादाभाई नौरोजी की अध्यक्षता में कोलकाता के 22वें सत्र में, कांग्रेस ने अपने लक्ष्य के रूप में स्वराज की घोषणा की और देश के वित्तीय तथा कार्यकारी प्रशासन पर और अधिक नियंत्रण के लिए विधान परिषदों का तत्काल विस्तार करने की मांग की। 1909 के इंडियन कौंसिल्स एक्ट ने गवर्नर जनरल को कार्यकारी परिषद में एक भारतीय सदस्य को नामित करने का अधिकार दे दिया, जिससे श्री सत्येंद्र प्रसन्नो सिन्हा की प्रथम भारतीय सदस्य के रूप में नियुक्ति हुई।

27. गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट 1909 में भारतीय विधान परिषद के सदस्यों की संख्या 16 से बढ़ाकर 60 कर दी गई। निर्वाचित सदस्यों को नगर पालिकाओं, जिला और स्थानीय निकायों, विश्वविद्यालयों, वाणिज्य परिसंघों और व्यापार संघों जैसे निर्वाचन क्षेत्रों तथा जमींदारों या चाय बागानों के मालिकों जैसे व्यक्तियों के समूह द्वारा चुनना था।

28. 1909 के एक्ट ने सभी प्रांतीय विधान परिषदों में गैर सरकारी बहुमत पैदा कर दिया परंतु केंद्रीय विधान परिषद में सरकारी बहुमत कायम रखा। निर्वाचन क्षेत्र छोटे थे, उनमें से सबसे बड़े में केवल 650 व्यक्ति शामिल थे। केंद्रीय परिषद के 27 निर्वाचित सदस्यों में से केवल 9 को समूचे भारत के लोगों का प्रतिनिधित्व करना था। इसी एक्ट ने दुखद रूप से पहली बार भारत में सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व का सिद्धांत सामने रखा तथा पृथक निर्वाचक वर्ग बनाया।

29. 1909 के एक्ट ने पहली बार परिषद के सदस्यों को जनसाधारण के हित के किसी भी मुद्दे पर प्रस्ताव पेश करने तथा उन पर परिषद को विभाजित करने की शक्ति भी प्रदान की। यह गैर सरकारी प्रस्तावों की शुरुआत थी। नियमों के तहत प्रथम प्रस्ताव 25 फरवरी, 1910 को गोपाल कृष्ण गोखले ने दक्षिण अफ्रीका के नटाल में ठेकाबद्ध श्रम पर प्रतिबंध की सिफारिश करते हुए पेश किया। रोलेट एक्ट पर, पंडित मदन मोहन मालवीय ने ढाई घंटे तक भाषण दिया। इसी प्रकार, वह इंडेमिनिटी बिल पर लगातार चार घंटे तक बोलते रहे, उन्होंने साढ़े छह घंटे बिल पर बोलने में लगाए। यह बहुत विरल बात थी कि गैर सरकारी सदस्य अपनी मर्जी चला सकते थे। फिर भी, उन्होंने संशोधन, प्रस्ताव और प्रश्न पूछकर अपनी उपस्थित दर्ज करवाई।

30. 1909 में निर्मित परिषद के नियमों ने बजट में चर्चा के दायरे को भी बढ़ा दिया। बजट पर दो स्तरों पर विचार किया गया। वित्तीय विवरण कहे जाने वाले प्रारंभिक बजट की

प्रस्तुति के बाद सामान्य चर्चा हुई। यद्यपि व्यय की कुछ मदों, जैसे सेना पर व्यय, को मतदान योग्य नहीं माना गया।

31. सरकार से सूचना मांगने के लिए प्रश्न करने का अधिकार 1892 में प्रदान किया गया परंतु 1909 तक पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार नहीं दिया गया था। हालांकि गैर सरकारी सदस्य परिषद में सरकार के प्रयासों को विफल करने की स्थिति में नहीं थे लेकिन उन्होंने प्रश्न प्रक्रिया को अत्यंत गंभीरता से लिया। 1911 में केवल 151 प्रश्न पूछे गए और उनका उत्तर दिया गया परंतु वर्ष 1919 तक यह संख्या बढ़कर 397 हो गई।

32. दो बिल, इंडियन क्रिमिनल लॉ एमेंडमेंट बिल तथा इंडियन क्रिमिनल लॉ एमरजेंसी पावर्स बिल जिन्हें आमतौर पर रोलेट बिल कहा जाता था, को क्रांतिकारी राष्ट्रवादी आंदोलनों के दमन के लिए सरकार को व्यापक शक्तियां प्रदान करने के विचार से, फरवरी, 1919 में परिषद में पेश किया गया। इनका विधान मंडल के भीतर और बाहर तीखा और लम्बे समय तक विरोध किया गया। दो दिन आठ घंटे तक बहस चली जिसमें 20 के करीब गैर सरकारी सदस्यों ने भाग लिया। भारतीय सदस्यों ने न केवल इसे पेश करने बल्कि प्रत्येक स्तर पर बिल का विरोध किया।

33. बिल के पारित होने के दौरान, परिषद 16 बार बंटी। सभी अवसरों पर, भारतीय सदस्यों ने एकजुट होकर मतदान किया। मालवीय और सुकुल जैसे कुछ सदस्यों ने विरोध स्वरूप परिषद की अपनी सदस्यता से इस्तीफा दे दिया।

34. गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट 1919 ने गवर्नर प्रांतों के रूप में, अपने आठ प्रमुख प्रांतों में द्विशासन प्रणाली आरंभ की। इस प्रणाली ने प्रत्येक प्रांत में सरकार का दोहरा रूप स्थापित किया। सरकार के कुछ क्षेत्रों पर नियंत्रण, जिसे 'अंतरित सूची' कहा जाता था, को प्रांतीय परिषद के प्रति जवाबदेह भारतीय मंत्रियों की एक सरकार को दे दिया गया। इसी प्रकार, सरकार के अन्य सभी क्षेत्र (आरक्षित सूची) वायसराय के नियंत्रण में रही। 'आरक्षित सूची' में रक्षा, विदेश मामले और संचार शामिल थे। 'अंतरित सूची' में कृषि, स्थानीय सरकार, स्वास्थ्य और शिक्षा की देखरेख शामिल थे।

35. 1919 के एक्ट के अंतर्गत, इंपीरियल विधान परिषद का विस्तार किया गया और द्विसदनीय विधानमंडल आरंभ किया गया। निचला सदन 144 सदस्यों की विधान सभा थी जिसमें तीन वर्ष के कार्यकाल के लिए 104 सदस्य निर्वाचित और 40 सदस्य नामित किए गए। उच्च सदन राज्य परिषद थी जिसमें पांच वर्ष के कार्यकाल के लिए 34 निर्वाचित और 26 नामित सदस्य शामिल थे। 1919 के एक्ट में, प्रशासन के केन्द्रीय और प्रांतीय विषयों के वर्गीकरण तथा प्रांतीय विषयों का स्थानीय सरकारों को शक्ति हस्तांतरण; तथा इन सरकारों को राजस्व और अन्य धन का आबंटन करने का प्रावधान भी किया गया।

36. मैंने पहले सर फिरोजशाह मेहता, श्री गोपाल कृष्ण गोखले तथा पंडित मदन मोहन मालवीय की भूमिका और योगदान का उल्लेख किया है। यह संबोधन एस. सत्यमूर्ति, सर तेज बहादुर सप्रू, पंडित मोतीलाल नेहरू, सी.आर. दास, श्री निवास शास्त्री आदि जैसे

स्वराजवादियों का विशेष जिक्र किए बिना अधूरा रहेगा। ये नेता परिषद में प्रवेश के मामले में सरकार के साथ असहयोग की कांग्रेस की नीति से असहमत थे। उनका मानना था कि विधान मंडलों में कार्य राष्ट्रवादी कार्य को बढ़ावा देने का अत्यंत प्रभावी माध्यम हो सकता है। इससे विदेशी शासन की कमियां उजागर की जा सकती थी और साथ ही अंग्रेजों को संसदीय प्रणाली की जटिलताओं को समझने की हमारी योग्यता उजागर हो सकती थी।

37. एक वकील और असाधारण वक्ता एस. सत्यमूर्ति ने 1923 में मद्रास विधान परिषद में प्रवेश किया और एक विधायक के रूप में उनकी ख्याति देशभर में फैल गई। उन्होंने प्रश्नकाल के मामले में उत्कृष्टता हासिल की और प्रश्नकर्ता की कला में प्रवीण हो गए। उन्हें 'प्रश्न काल के भय' के रूप में जाना जाता था। अपने शानदार और प्रभावी भाषणों से उन्होंने 'ट्रम्पेट वायस' नाम अर्जित किया। मद्रास विधान परिषद के चुनावों का समय आने पर, गांधी जी ने घोषणा की कि विधान मंडलों में एक सत्यमूर्ति को भेजना काफी होगा। श्री सत्यमूर्ति 1935 से 1939 तक केन्द्रीय विधान सभा के सदस्य रहे जहां विधायक के रूप में उनकी सफलता के कारण गांधी जी ने यह टिप्पणी की कि यदि हमारे विधानमंडलों में दस सत्यमूर्ति होते तो अंग्रेज बहुत पहले जा चुके होते।

38. सर तेज बहादुर सप्रू महात्मा गांधी जिन्होंने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध अहिंसात्मक सविनय अवज्ञा की वकालत की थी, के उभरने के बाद खुलकर कांग्रेस से अलग हो गए। सर सप्रू का उन लोगों ने विरोध किया जो यह मानते थे कि विधायक वायसराय के अप्रतिनिधित्ववादी 'रबड़ की मुहर' हैं। यद्यपि कांग्रेस के बहुत से राजनीतिज्ञ सर सप्रू का एक प्रख्यात कानूनविद के रूप में सम्मान किया करते थे। अंग्रेजों के साथ उनके रिश्तों ने उन्हें मध्यस्थ के तौर पर महत्त्वपूर्ण बना दिया तथा सर सप्रू ने गांधी और वायसराय लॉर्ड इरविन के बीच मध्यस्थता करवाई जिससे गांधी-इरविन समझौता करने में मदद मिली। सर सप्रू ने गांधी, डॉ. बी.आर. अंबेडकर और अंग्रेजों के बीच पृथक निर्वाचक के मुद्दे, जिसे पूना समझौते द्वारा निपटाया गया, पर भी मध्यस्थता करवाई। सर सप्रू को 1931-1933 के गोल मेज सम्मेलनों में भारतीय उदारवादियों के प्रतिनिधि के रूप में चुना गया। उनकी अंतिम प्रमुख भूमिका एक ऐसे मुख्य वकील की थी जिसने आजाद हिंद फौज के बंदी सैनिकों को बचाने का कार्य किया।

39. बंगाल परिषद में स्वराज्य पार्टी के नेता के रूप में देशबंधु चित्तरंजन दास ने एच.एस. सुहरावर्दी, किरण शंकर राय, तुलसी गोस्वामी आदि के सहयोग से अपने वक्तृत्व और संसदीय कौशल के द्वारा ब्रिटिश शासन की नींव हिला दी। इस प्रकार, केंद्रीय परिषद में स्वराज्य पार्टी के नेता के रूप में, पंडित मोतीलाल नेहरू ने भारत में संवैधानिक सरकार की मूल बुनियाद डाली। मोतीलाल और चित्तरंजन एक संगठित भारत के प्रस्ताव में मुस्लिमों को स्वराज्य पार्टी के साथ जोड़े रखने में सक्षम थे।

40. 1919 के एक्ट के बाद गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट, 1935 से लागू हो गया जिसने प्रणाली में संघीय विशेषताएं और प्रांतीय स्वायत्तता आरंभ की तथा केंद्र और प्रांतों के

बीच विधायी शक्तियों के वितरण के प्रावधान भी किए। **गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट, 1935** ने, दूसरों के साथ-साथ, शामिल होने के इच्छुक ब्रिटिश प्रांतों और भारतीय राज्यों को मिलाने वाले एक 'अखिल भारतीय संघ' की परिकल्पना की। 1930 के गोलमेज सम्मेलन तक, भारत पूर्णत: एक संगठित राष्ट्र था और प्रांतों के पास जो भी शक्तियां थी, वे केन्द्र ने दी हुई थीं। प्रांत केंद्र के एजेंट ही थे। पहली बार 1935 के एक्ट ने एक संसदीय प्रणाली प्रदान की जिसमें न केवल ब्रिटिश भारत के गवर्नरों के प्रांत बल्कि चीफ कमीशनरों के प्रांत और रियासतें भी शामिल थीं। यह अन्तत: संगठित प्रणाली को भंग करना चाहता था जिसे अब तक ब्रिटिश भारत द्वारा संचालित किया जा रहा था। 1919 के संविधान के सिद्धांत संघीय की बजाय, विकेंद्रीकरण के हो गए थे। नए एक्ट के तहत, कानून में पहली बार प्रांतों को अपने-अपने क्षेत्रों में, अपने अधिकार से, सामान्य परिस्थिति में केंद्रीय नियंत्रण से स्वतंत्र, कार्यकारी और वैधानिक शक्तियों का प्रयोग करने वाली पृथक इकाइयों के रूप में मान्यता दी गई। तथापि, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट के लागू होने के बाद भारत की केंद्रीय सरकार का संविधान कुल मिलाकर वैसा ही बना रहा, जैसा कि 1919 के एक्ट में था। 1935 के एक्ट का संघीय हिस्सा कभी प्रचलन में नहीं आया।

41. भारत की जनता के प्रथम प्रतिनिधि निकाय, संविधान सभा ने 9 दिसम्बर, 1946 को अपना महत्त्वपूर्ण कार्य आरंभ कर दिया। संविधान सभा के सदस्यों को प्रांतीय विधान सभाओं के सदस्यों द्वारा अप्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुना गया। ब्रिटिश संसद द्वारा लागू 1947 के भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम में घोषणा की गई कि संविधान सभा पूर्णत: संप्रभु निकाय रहेगी तथा केन्द्रीय विधान सभा और राज्य परिषदें 14 अगस्त, 1947 से समाप्त हो जाएंगी। 14-15 अगस्त, 1947 की मध्यरात्रि को हमारी स्वतंत्रता की भोर के साथ, संविधान सभा ने पूर्ण शक्तियां प्राप्त कर लीं तथा स्वतंत्र भारत की विधान सभा के रूप में स्थान ले लिया। संविधान सभा के दो कार्य, संविधान निर्माण और विधान निर्माण पूर्णत: अलग-अलग कर दिए गए तथा संविधान सभा (विधायी) ने 17 नवम्बर, 1947 से कामकाज आरंभ कर दिया।

42. अध्यक्ष के रूप में डॉ. राजेंद्र प्रसाद और प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप में डॉ. बी.आर. अंबेडकर सहित संविधान सभा ने ग्यारह सत्रों के दौरान 2 वर्ष, 11 महीने और 17 दिन की लम्बी अवधि तक संसद भवन के केंद्रीय कक्ष में गहन विचार-विमर्श किया और पुनरुत्थानशील भारत के लिए आदर्श, एक उत्कृष्ट पार्चमेंट प्रदान किया। तत्पश्चात संविधान को 26 नवम्बर, 1949 को हम, भारत के लोगों, द्वारा अंगीकृत किया गया और संविधान सभा के सदस्यों ने 24 जनवरी, 1950 को इस पर हस्ताक्षर किए। 26 जनवरी, 1950 को लागू होने वाले संविधान में 395 अनुच्छेद, 8 अनुसूचियां थीं तथा इसे विश्व का सबसे लम्बा संविधान होने का गौरव प्राप्त हुआ। संविधान लागू होने से तुरंत पहले संविधान सभा भारत की अस्थायी संसद बन गई और 1952 में वयस्क मताधिकार पर आधारित प्रथम

आम चुनावों तक ऐसे ही कार्य करती रही। तब से संविधान, जो एक सबसे श्रेष्ठ गणतंत्रात्मक संविधान सिद्ध हुआ, में निहित उदात्त आदर्शों द्वारा राष्ट्र का मार्गदर्शन होता रहा है।

43. मित्रो, देवियो और सज्जनो, मैंने एक विशेष उद्देश्य से प्रतिनिधि सरकार के इतिहास की इतनी व्यापक व्याख्या की है। इस सच्चाई पर बल दिया जाना चाहिए कि यदि स्वतंत्रता पूर्व दिनों के प्रमुख विधान निर्माता सीमित शक्तियों के साथ इतना कुछ कर सकते थे तो आज हमारे सांसद, विधायक और विधान परिषद के सदस्य बहुत कुछ कर सकते हैं।

44. हमारे आधुनिक समय के विधान निर्माताओं को यह जानना चाहिए कि भारत के संविधान में हमारी संसद और विधान सभाओं को शासन के केन्द्र में रखा है तथा उन्हें सुशासन और सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के प्रमुख माध्यम के रूप में संकल्पित किया है। एक विधान निर्माता का कार्य 24 घंटे का है। विधान निर्माताओं को लोगों की समस्याओं और चिंताओं के प्रति सदैव संवेदनशील और जिम्मेदार होना चाहिए। उन्हें विधान मंडल के पटल पर जनता की शिकायतों को उठाना चाहिए तथा जनता और सरकार के बीच एक कड़ी के रूप में कार्य करना चाहिए।

45. विधान निर्माण एक सांसद का पहला और सबसे प्रमुख दायित्व है। यह सबसे दुर्भाग्यपूर्ण है कि हमारी संसद में विधान निर्माण के लिए प्रदत्त समय में क्रमश: कमी आ रही है। उदाहरण के लिए, 1952-57 की प्रथम लोक सभा में 677 बैठकें हुईं जिनमें 319 बिल पारित किए गए। तुलनात्मक रूप से, 2004-2009 की चौदहवीं लोक सभा में 332 बैठकें हुईं और केवल 247 बिल पारित हुए। पंद्रहवीं लोक सभा में 357 बैठकें हुईं और 181 बिल पारित हुए जबकि सोलहवीं लोकसभा में 197 बैठकें हुईं और मात्र 111 बिल (10वें सत्र तक) पारित हुए।

46. दसवीं लोक सभा (1991-96) से बाद के अवरोध/स्थगन के कारण खराब हुए समय के आंकड़े उपलब्ध हैं। दसवीं लोक सभा में कुल समय का 9.95 प्रतिशत, ग्यारहवीं लोक सभा में 5.28 प्रतिशत, बारहवीं लोक सभा में 11.93 प्रतिशत, तेरहवीं लोक सभा में 18.95 प्रतिशत, चौदहवीं लोक सभा में 19.58 प्रतिशत, पंद्रहवीं लोक सभा में 41.6 प्रतिशत और 16वीं लोक सभा में लगभग 16 प्रतिशत (10वें सत्र तक) समय व्यर्थ हुआ।

47. पीठासीन अधिकारी सम्मेलनों में बार-बार प्रत्येक वर्ष न्यूनतम 100 दिनों की बैठकें आयोजित करने की आवश्यकता को दोहराया गया है। प्रशासन की बढ़ती जटिलता के कारण, विधान निर्माण से पहले पर्याप्त विचार विमर्श और समीक्षा होनी चाहिए। यदि ऐसा न हुआ तो इससे अपेक्षित परिणाम या उद्देश्य प्राप्त नहीं हो पाएंगे। हमारे देश के राजनीतिक दलों और नेताओं को सामूहिक रूप से यह विचार करने की आवश्यकता है कि हमारी संसद और विधान सभाओं का सुचारू संचालन कैसे सुनिश्चित हो।

48. स्वतंत्रता के समय भारत के सम्मुख गरीबी, निरक्षरता, जातीय और भाषायी विविधता, विविध जातियां और वर्ग तथा अर्थव्यवस्था का ग्रामीण आधार जैसी विकट

चुनौतियां थी जो भारत के लोकतांत्रिक संक्रमण के विरुद्ध थी। राजनीतिक एकीकरण के समक्ष इतनी अधिक कठिनाइयां थीं कि धार्मिक अस्मिता के आधार पर गृह विवाद ने विभाजन के समय समाज को छिन्न-भिन्न कर दिया। परंतु हमारे आलोचक पूरी तरह गलत सिद्ध हुए हैं।

49. आज भारत में अत्यधिक स्वतंत्र प्रेस, राजनीतिक दलों की सुदृढ़ प्रणाली, एक स्वतंत्र और सक्रिय न्यायपालिका, अराजनीतिक सेना तथा प्रगतिशील सिविल समाज है। इसके लोकतंत्र में, प्रभावी चुनाव आयोग, स्वायत्त संघ लोक सेवा आयोग, नियंत्रक और महालेखाकार के रूप में लोक लेखाओं का सक्रिय प्रहरी, एक स्वतंत्र राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग आदि जैसे अनेक संस्थाएं मौजूद हैं। इन लोकतांत्रिक संस्थाओं की संस्थागत प्रामाणिकता संदेह से परे है।

50. भारत का लोकतांत्रिक संक्रमण एक ऐसे देश की साहसिक छलांग थी, जो औपनिवेशिक शासन से उभर रहा था। भारत के नेताओं का एक ऐसे संविधान को अपनाना साहसिक निर्णय था जिसमें एक ही बार में, इसके राजतंत्र के दिशा निर्देशक सिद्धांत के रूप में उदारवादी लोकतंत्र शामिल कर दिया गया, जबकि पश्चिम के पुराने लोकतांत्रिक राष्ट्रों में लम्बी अवधि तक लोकतंत्र का धीरे-धीरे विकास हुआ था। भारत का लोकतांत्रिक संक्रमण और एकीकरण राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन की प्रबल विरासत का ऋणी है। करोड़ों पुरुष और महिलाएं राष्ट्रवादी आह्वान पर उठ खड़े हुए और उन्होंने जन आंदोलन में सक्रिय भाग लिया। भारत ने न केवल अपने लोकतंत्र को कायम रखा है, बल्कि आज यह विश्व का सबसे बड़ा और फलता-फूलता लोकतंत्र है।

51. भारत के संसदीय लोकतंत्र की रक्षा लोकतंत्र के प्रति भारतीय जनता के उत्साह द्वारा की जाती है। हमारी जनता ने 16 आम चुनावों में अपनी प्रभावशाली और उत्साहकारी भागीदारी के जरिए हमारी राजनीतिक प्रणाली के अनुमोदन पर मुहर लगायी है। 2014 के पिछले आम चुनावों में 84.3 करोड़ से अधिक मतदाताओं के लगभग 66.3 प्रतिशत ने लोक सभा के 543 प्रतिनिधियों को चुनने के लिए मतदान किया। 1951-52 में लोक सभा के पहले आम चुनावों के बाद से हमारे मतदाताओं ने लोक सभा के सोलह आम चुनावों में से आठ में केन्द्र में सरकार परिवर्तन किया है।

52. भारत के लोकतांत्रिक शासन की संस्थाओं का स्वागत विकासशील दुनिया में एक आदर्श राजनीतिक प्रणाली के रूप में किया जाता है, इसी प्रकार भारत के अत्यंत बहु-सांस्कृतिक समाज को उन संक्रमणकारी समाजों द्वारा एक प्रकाश स्तंभ के रूप में देखा जाता है जो जाति, पंथ, भाषा और संस्कृति की जटिलताओं से निपटने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। आज विकासशील दुनिया भारत को प्रशंसा की दृष्टि से देखती है और यह सही भी है क्योंकि भारत एक अरब से अधिक लोगों के साथ लोकतांत्रिक शासन के कठिन पथ पर सफलतापूर्वक अग्रसर है।

53. हमारे संसदीय लोकतंत्र के सफल संचालन के बावजूद, बहुत से लोग अभी भी निर्धनता, अभाव और निरक्षरता की स्थिति में रहते हैं। हमारे समाज का एक बड़ा वर्ग अभी

भी हमारे शासन के उच्च आदर्शों और उद्देश्यों से अछूता बना हुआ है। लोगों के इन वर्गों के जीवन पर एक सकारात्मक प्रभाव डालने में हम तभी सफल हो सकते हैं जब हम यह दावा कर सकें कि शासन की लोकतांत्रिक प्रणाली, जिसे हमने अपनाया है, हमारे सभी लोगों के लिए प्रासंगिक बन गई है।

54. भारतीय लोकतंत्र के दिशा निर्देशक सिद्धांत को साकार करना हमारे समक्ष चुनौती है जैसा कि हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने संकल्पना की थी, ''यह ऐसा होगा जहां सबसे निर्बल को सबसे शक्तिशाली के समान एक जैसे अवसर प्राप्त होने चाहिए।'' लोकतंत्र में एक ऐसा अनुकूल वातावरण प्रदान करना होगा जो शासन की प्रक्रिया में पूर्ण सहभागी बनने में समाज के प्रत्येक वर्ग की सहायता करे।

55. अंत में, मैं इस समारोह के आयोजन के लिए आयोजकों को बधाई देता हूं। मैं राजस्थान की राज्य सरकार से अनुरोध करता हूं कि वह श्री शेखावत के जीवन, सिद्धांतों, स्मृतियों और विरासत को आगे बढ़ाने के लिए भरपूर प्रयास करे।

धन्यवाद,

जय हिंद!